International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 618-619

मेवाड़ में आधुनिक शिक्षा का विकास एवं सामाजिक परिवर्तन

निखिल कुमार
शोध छात्र, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान, भारत।

प्रस्तावना

सामाजिक–आर्थिक जीवन के मूल्य, व्यवहार और विश्वासों को जनमानस की मानसिक परिपक्वता के संदर्भ में देखा जा सकता है। यह परिपक्वता 'समाजीकरण' की अन्त और बाह्य क्रियाओं से उपार्जित अनुभव एवं प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त होती है। शिक्षा जीवन के इन्हीं अनुभवों और प्रशिक्षण का एक स्वरूप है, वस्तुतः शिक्षा किसी भी समाज के लिए दो प्रकार का कार्य करती है। पहली पूर्वजों द्वारा संचित ज्ञान को नई पीढ़ी को हस्तान्तरण तथा पूर्व ज्ञान के आधार पर नए ज्ञान की सृष्टि। अनौपचारिक शिक्षा का सारा स्वरूप इन्हीं संदर्भों के साथ जुड़ा हुआ है। जैसे–जैसे विश्व विशिष्टीकरण की ओर अग्रसर होने लगा वैसे वैसे अनौपचारिक शिक्षा का विस्तार भी होता चला गया जिसे दूसरे शब्दों में हम आधुनिक शिक्षा के नाम से जानते हैं। व्यावहारिक शिक्षा का ज्ञान, उद्देश्य, नैतिक आध्यात्मिक, अर्थ–सन्तुष्टि और बौद्धिक विकास युक्त मानव को सामाजिक मानव बनाना कहा जा सकता है। 18वीं सदी के एक प्रतिलिपित ग्रन्थ मधुमालती द्वारा मेवाड़ के सामाजिक जीवन में शिक्षा का उद्देश्य आनन्द, ज्ञान और जीविका–निर्वाह उल्लेखित किया गया है।[1] इसकी पुष्टि अन्य परवर्ती स्रोतों द्वारा भी होती है।[2] 1863 ई. के पूर्व तक शिक्षा का संचालन समाज द्वारा किया जाता था न कि राज्य द्वारा।[3] इस प्रकार परिवार, जातियां, धार्मिक संस्थाएं और व्यक्ति की आत्मिक इच्छा स्वशैक्षणिक संस्था के रूप में प्रतिष्ठापित रहे थे। इनके द्वारा लौकिक, व्यावहारिक, सैद्धान्तिक एवं व्यावसायिक आदि विभिन्न प्रकार के ज्ञान प्राप्त और प्रदान किये जाते थे। आलोच्यकाल में शिक्षा संबंधी कई सुविधाएं दिखाई देती है। काफी समय तक राज्य द्वारा शिक्षा प्रदान करने का कोई दायित्व न था, बाद में अंग्रेजी शिक्षा का प्रादुर्भाव हुआ। परिवार, पंडित, पाठशालाएं तथा इसी प्रकार की अन्य संस्थाएं क्षेत्र के प्रमुख साधन थे। इन्हीं संस्थाओं का क्रमबद्ध विवेचन आगे की पंक्तियों में प्रस्तुत है –

(अ) परिवार

शिक्षा–प्रदाय संस्था के रूप में जीवन को सफल बनाने तथा सामाजिक–आर्थिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिये प्राचीन समय से ही परिवार प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रमुख केन्द्र रहा है। इस संस्था द्वारा प्राणी जीवन की नैतिकता, सदाचरण और सांसारिकता का व्यावहारिक पाठ पढ़ता है। वस्तुतः व्यक्तित्व–निर्माण की प्रथम पाठशाला के रूप में परिवार ही कार्य करता आया है। परम्परावादी समाज में इस संस्था का महत्त्व शिक्षा की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है जबकि जन–विश्वासों, रूढ़ियों और मूल्यों का ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। मेवाड़ी–समाज में भी परम्परात्मक संस्था के रूप में परिवार शिक्षा–अर्जन का मुख्य केन्द्र रहा था।

व्यावहारिक ज्ञान

रोटी बनाना, कपड़े धोना, कपड़े सीना, अपने छोटे भाई–बहिनों की देखरेख रखना, रुग्ण व्यक्तियों की देखभाल करना इत्यादि व्यावहारिक ज्ञान को बालिकाओं द्वारा परिवार में रहते हुए अपनी माँ तथा बुजुर्ग स्त्रियों से सीखा जाता रहा था। नैतिकता, सदाचरण और मर्यादा के स्त्रियोचित गुण भी परिवार द्वारा प्राप्त किये जाते थे। उत्सव–गीतों, विभिन्न त्यौहारों पर अंकन किये जाने वाले रंग–मांडलों, संझा, साथिया (स्वास्तिक) आदि आकृति–चित्रण, श्रृंगार–प्रसाधन, मेंहदी, गृह–साज–सज्जा, परिवार में उत्पन्न हुए नवजात शिशु का प्रसूति–कर्म तथा कुटीर औषधियों के गुण–अवगुण व प्रयोग का ज्ञान आदि के रूप में लोक–कला और विज्ञान की प्रायोगिक शिक्षा परिवार के सदस्यों द्वारा ही प्राप्त होती थी। नव–विवाहित वधुओं के लिए उनकी सास एवं ननदें गृहस्थ–धर्म की ज्ञान–प्रदाता अध्यापिकाऐं होती थी। संक्षेप में स्त्री के ज्ञान के विकास में परिवार महत्वपूर्ण शैक्षणिक संस्था था।[3] इस संस्था का यह शैक्षणिक स्वरूप आधुनिक स्वच्छन्दवादी–पारिवारिक प्रवृत्तियों वाले युग में भी समाप्त नहीं हो सका है। यहां यह कहना अनुचित न होगा कि वर्तमान समय में परिवार के ये समस्त कार्य लोप–से होते दिखाई देते हैं तथा परिवार के इन सदस्यों को इन तथ्यों का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए भी औपचारिक शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है।

बालक भी परिवार से अपनी पैतृक परम्परा, कुल–मर्यादा तथा सामाजिकता का ज्ञान अर्जित करता था। वह अपने दादा–दादी, माता–पिता और अन्य पारिवारिक बुजुर्गों तथा अग्रजों से व्यावहारिक शिक्षा के साथ–साथ व्यवसायिक, शास्त्रीय तथा उपयोगी ज्ञान प्राप्त करता था।

अन्य ज्ञान

अन्त में, परिवार और परम्परा से प्राप्त ज्ञान के रूप में ऋतु–विज्ञान सम्बन्धी कहावतें, देशी चिकित्सा सम्बन्धी भेषज ज्ञान, लोक शल्य चिकित्सा, नैतिक–आचरण सम्बन्धी दोहा, कहानियों और कथाओं आदि का उल्लेख किया जा सकता है जिनका समाज में सर्वत्र प्रचलन रहा था।[4] रुढ़िगत अनुभवों से प्राप्त इस ज्ञान–परम्परा का प्रभाव समाज के अन्धविश्वासों, जादू–मंत्र, भूत–प्रेत तथा प्राकृतिक चिकित्सा की परम्परा में दिखाई देता रहा था।[5]

शिक्षा की उपरोक्त स्थिति का अवलोकन करने के पश्चात् तथ्यतः कहा जा सकता है कि अध्ययनकालीन मेवाड़ में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का समाजीकरण करने, जीवन–धर्म को समझाने तथा मानव–व्यवहार को सिखलाने वाला ज्ञान तथा आर्थिकोपार्जन के लिये प्रशिक्षण प्रदान करना था। किन्तु 19वीं शताब्दी में आंग्ल शिक्षा पद्धति ने शुद्ध ज्ञान प्राप्ति के साधन विद्या को केवल अर्थ प्राप्ति एवं राज्य सेवा के सेवक बनाने की शिक्षा को पनपाना प्रारम्भ

किया जो कि मेवाड़ की जन–अभिधारणाओं के विरोधाभास के कारण पल्लवित नहीं हो सकी थी। अशिक्षा का विस्तृत प्रभाव तत्कालीन मेवाड़ राज्य ही नहीं अपितु सभी देशी राज्यों में पनप रहे सामाजिक नियंत्रणों का प्रतिफल था। फिर भी मेवाड़ में प्रचलित शिक्षा का स्वरूप सामाजिक–आर्थिक ज्ञानार्जन से सम्बन्धित रहा था जिसका कि आधुनिक शिक्षा पद्धति में सर्वथा अभाव है।

सन्दर्भ

1. चतुर्भुज–मधुमालती (ह.प्र.), पत्र 74, 187, प्रा.वि.प्र.उ., प्रति सं. 189
2. कोठारी, पृ. 43; सो.ला.मी.रा. पृ. 266
3. मेवाड़ रेजीडेन्सी, पृ. 82। 1900 ई. तक व्यक्तिगत पाठशालाएं, मकतब विद्यमान रहे थे जहां साधारण हिन्दी, उर्दू एवं गणितपाटी का ज्ञान प्रदान किया जाता रहा था। अध्यापक प्रत्येक पाटी पर 1 आना प्रति माह शुल्क लेता था। –गजेटियर रिपोर्ट ऑफ मेवाड़ (ह.प्र.), पृ.
4. शिवचरण मेनारिया–मेवाड़ का इतिहास (अप्र.शो.) पृ. 240
5. नानूराम संस्कर्ता–राजस्थानी लोक–साहित्य, पृ. 11–12; पूर्णिमा गहलोत–लोकगीत (संपादन), पृ. 8–9, 12
6. राणा सरदारसिंह पर गोगुन्दा के झाला लालसिंह द्वारा जादू–मंत्र कराये जाने का आरोप (वी.वि., पृ. 1891), पाणे री गोपाल द्वारा राणा स्वरूपसिंह पर जादू कराये जाने का आरोप (वी.वि., पृ. 1957); राणा स्वरूपसिंह का पत्र पोलिटिकल एजेन्ट जार्ज लारेन्स को (वी.वि., पृ. 2021–22); डाकन, भूत और प्रेतों में समाज का विश्वास (वी.वि., पृ. 2039–40); फोड़े पर तेजाब आदि की पट्टी करना (वी.वि., पृ. 2044); सहीवाला, भा. 2, पृ. 93–94; कोठारी, पृ. 62–63। अंग को जलाना (डाम लगाना), सांप के जहर को मंत्र से उतारना आदि कई आज भी प्रचलित हैं।